आधुनिक मतानुसारिणी

संक्षिप्त जल-चिकित्सा

कूनेके बादके डा० केलाग
प्रवर्तित नये जल-चिकित्सा-
पद्धतिके कुछ बिल्कुल नये
प्रयोग और रोगो-
पचार विषयक नये विचार

—हेमचन्द्र मोदी

मूल्य तीन आने

आधुनिक मतानुसारिणी

संक्षिप्त जल-चिकित्सा

" अब भी बहुतसे चिकित्सक पुरानी सीखी हुई बातोंको भूल नहीं सकते। रोगोंकी आधुनिक चिकित्सा उन पुरानी रीतियोंपर बहुत अधिक अवलम्बन करती है जिन्हें कि प्राकृतिक नामसे पुकारा जाता है जैसे कि भोजन, व्यायाम, स्नान और मालिश—दूसरे शब्दोंमें मनुष्यकी स्वाभाविक शक्तियोंको सरल और सयुक्तिक पोषण देना, अधिक रक्ताभिसरण कराना, मलोत्सर्ग संस्थानकी रुकावटोंको दूर करना आदि। अनुभवोंने बता दिया है कि औषधियोंका उन रोगोंपर कुछ भी असर नहीं होता जिनके लिए कि उनका उपयोग किया जाता है। "

—सर (डा०) विलियम ओसलर

एम० डी०, एफ० आर० सी० एस

(आक्सफर्डमें औषधि-विज्ञानके अध्यापक)

" यदि मैं एक वक्त और जीवन जी सकूं तो मैं इस बातको सिद्ध करने और प्रचार करनेमें उसे खर्च करूं कि रोगोंके जीवाणु अपने स्वाभाविक निवासस्थान —रोगिष्ट तंतुपिण्ड और स्नायु—ढूंढ लेते हैं परंतु उन्हें रोगिष्ट बनानेका कारण नहीं होते। **—रूडोल्फ व्हिरचो**

(सुप्रसिद्ध रोगशास्त्रज्ञ और रोग-जन्तु-सिद्धान्तके अन्वेषक।)

चिकित्सकोंने मेरे जीवनको तथा दूसरोंकेको विषमय बना दिया है। वकीलोंके समान डाक्टरोंका मतलब रुपया गाँठना है। **—टाल्स्टाय**

किसी चिकित्सकको बुलानेकी अपेक्षा किसी मित्रको बुलाओ। डाक्टर और कुछ नहीं एक शत्रु है। **—पायथोगोरस**

" विज्ञानके नामसे औषध-शास्त्रका महत्त्व मनुष्यको उन बुराइओंकी अपेक्षा अधिक नुकसान पहुँचाता है जिनको अच्छा करनेका बहाना वह करता है। प्रकृतिके अनुकूल जीवन व्यतीत करो और औषध-शास्त्रियोंसे घृणा करो। **—रूसो**

औषधशास्त्री वह आदमी है जो ऐसी ओषधियोंको, जिनके विषयमें वह बहुत कम जानता है, ऐसे मानव शरीरमें डालता है जिसके विषयमें वह और भी कम जानता है। **—वाल्टेयर**

वही चिकित्सा सच्ची है जो कि प्रकृति स्वयं करती है। डाक्टरोंकी औषधियां केवल लक्षणोंको रोकने का प्रयत्न करती हैं परंतु रोगको नहीं अच्छा करतीं।

—शोपनहॉर

संक्षिप्त जल-चिकित्सा

रोगोत्पत्तिके कारणोंपर आधुनिक विचार

हिन्दीमे जलचिकित्साविषयक सभी अन्य पुस्तकोमे रोगोत्पत्ति आदिके विषयमे जो सिद्धान्त दिये है वे प्राय. जर्मनीके सुप्रसिद्ध जल-चिकित्सक लुई कुहनेके मतानुसार है। यहाँपर हम अपने पाठकोके ज्ञानके लिए अमेरिकाके सुप्रसिद्ध जल-चिकित्साचार्य डा० जे० एच० केलाग एम० डी०, एफ० आर० सी० एस० तथा वीएना यूनिव्हर्सिटीके सुप्रसिद्ध जलचिकित्साचार्य डा० विन्टरनिट्ज तथा दूसरे जर्मन चिकित्सक डा० ओटो कार्क आदिका दूसरा सिद्धान्त देते है जो कि रोगोकी चिकित्साकी दृष्टिसे बहुत उपयोगी है।

प्राणिशरीरके सूक्ष्मसे सूक्ष्म और स्थूलसे स्थूल अवयवो, नसो नाडियोमे निरंतर एक तरहकी धडकन स्पदन या कपन हुआ करता है। यह प्रक्रिया प्रत्येक अगकी अलग अलग ढँगकी होती है। जहाँ इस प्रक्रियामे फर्क होता है वहींपर किसी बीमारीका सूत्रपात हो जाता है। स्पदनकी यह प्रक्रिया केवल प्राणिजगतमे ही नही, भौतिक जगतमे भी सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र तारागणोमे भी जारी है। जब तक

---

१ लुई कुहनेका मुख्य ग्रन्थ "नवीन चिकित्साविज्ञान" हमारे यहाँसे प्रकाशित हुआ है। मूल्य ३)

इनमे स्पदन हुआ करता है तभी तक इनका जीवन है और ज्यो ही इस स्पदनमे फर्क हुआ त्यो ही कोई आफत आती है। मानव-शरीरमे इन विभिन्न अगोकी धडकनमे फर्क होनेसे विभिन्न बीमारियाँ होती है। जैसे हृदयकी धड़कनमे फर्क होनेसे हृदयसंबंधी रोग, यकृतकी धडकनमे फर्क होनेसे यकृतके रोग। यह धडकन संकोच और विस्तार-रूप होती है, अर्थात् वह अग कुछ क्षणोके लिए सिकुडता और फिर फैलता है। किसी भी अवयवकी इस सिकुड़ने और फैलनेकी प्रक्रियामे फर्क होना ही रोगका मूल कारण है।

अब प्रश्न यह होता है कि विभिन्न अगो और अवयवोमे स्पदनकी रीतिमे फर्क होनेका क्या कारण है? इसका एक सरल उत्तर यह भी है कि उन अवयवोमे और अगोमे मल इकट्ठा होनेमे उनकी स्पंदनकी गतिमे फर्क होता है; परतु साथ-साथमे यह भी कहा जा सकता है कि स्पदनकी गतिमे फर्क होनेसे वहाँ मल इकट्ठे हो जाते है।

यह विषय एक उदाहरणसे स्पष्ट हो जायगा। यदि कोई घोडा ठीक तौरसे काम नही करता तो यही कहा जाता है कि या तो इसको ठीक तौरसे खानेको नही मिला, या इससे बहुत दिनसे काम नही लिया गया, या बहुत अधिक कामसे यह थक गया है। यही बात हम शरीरके अवयवो आदिके संबधमे कह सकते है कि उनके लिए आवश्यक खुराक नही मिली, उनसे काम नही लिया गया या उनसे बहुत अधिक काम लिया गया है।

प्राणि-शरीरको एक रसायनशालाकी उपमा दी गई है। विश्वमे जितने तत्त्व पाये जाते है वे सभी प्राणि-शरीरमे न्यूनाधिक परिमाणमे

पाये जाते है। हाइड्रोजन, कार्बन, नाइट्रोजन, आक्सीजन, पोटाशियम, सोडियम, केल्शियम, मेग्नेशियम, मेगनीज, लोहा, फास्फरस, गधक, सिलिकान, क्लोरीन, फ्लुओरीन, आयोडीन, अल्युमिनियम, मग्निया आदि तो इतने परिमाणमे होते है कि उनका यत्रोके द्वारा पृथक्करण किया जा सकता है, परतु सोना, चाँदी, पारा, रेडियम आदि धातुएँ बहुत सूक्ष्म परिमाणमे पाई जाती है। शरीरके विभिन्न अवयवोमे इन तत्त्वोकी जितनी आवश्यकता है उसमे न्यूनाधिक होना तथा ऐसा भोजन लेना जिसमे कि इन तत्त्वोकी समतुल्यता नही है उन विशिष्ट अगोको भूखो मारना है। इन तत्त्वोकी कमीसे उनके स्पदनमे फर्क हो जाता है और फिर वहाँ मल इकट्ठा होने लगता है। इस सबधमे यह कह देना भी आवश्यक है कि इन तत्त्वोको मानव-शरीर खनिज अथवा निरिन्द्रिय (inorganic) रूपमे ग्रहण नही करता बल्कि सेन्द्रिय (औद्भिज या प्राणिज) रूपमे ही ग्रहण करता है। लोहेको यदि हम खूब बारीक पीस कर खा जायँ, तो भी उसे शरीर ग्रहण नही करेगा, वैसाका वैसा मलद्वारा निकाल देगा; परन्तु लोहेको यदि हम उद्भिज और प्राणिज रूपमे शाको, वनस्पतियो, फलो और मासके रूपमे खायँगे, तो ही उसे शरीर पचाकर आत्मसात् करेगा। किस वनस्पति, किस फल और किस शाकमे कौनसे तत्त्वका कितने परिमाणमे अस्तित्व है यह जाननेके लिए इस विषयके अन्य विस्तृत ग्रथ देखने चाहिए। *

---

* इस विषयकी विशेष जानकारीके लिये देखो शीघ्रही प्रकाशित होनेवाला "सांपत्तिक जल-चिकित्साशास्त्र" मूल्य लगभग ५)

अब दूसरा प्रश्न यह उठता है कि हम अपने सभी अवयवोसे ठीक ठीक काम किस तरह ले जिसमे कि वे न तो अधिक कामके भारसे ही नष्ट हो और न निकम्मे रहनेसे ही मलोके एकत्र होनेका स्थान बने। जलचिकित्सा, विद्युत्चिकित्सा, प्रकाशचिकित्सा आदि सभी प्राकृतिक चिकित्सा-प्रणालियॉ तथा तरह तरहकी कसरते इसी उद्देश्यसे निर्मित हुई है। जब तक शरीरके विभिन्न अवयवोको आवश्यक व्यायाम नही मिलता तब तक वे खुराकमेसे आवश्यक तत्त्वोको नही खीचते। पौष्टिकसे पौष्टिक खुराक खानेपर भी बहुतसे आदमी दुर्बल ही बने रहते है, इसका मुख्य कारण यही है। आयुर्वेदमे रसशास्त्रका उद्देश्य यही है कि पारा वगैरह उग्र योगवाही पदार्थोके वाहनद्वारा विशिष्ट तत्त्वोको बिना व्यायामके ही शरीरमे आत्मसात् करा दिया जाय।

शरीरके किसी भी अवयवपर शीत प्रयोग करनेसे वह अवयव सिकुडता है और इसके बाद ही शीघ्रताके साथ वहॉ गर्मी आ जाती है जिससे वह अवयव फिर फैल जाता है। अपनी स्थितिपर फिर लौट आनेकी इस क्रियाको जलचिकित्सामे प्रतिक्रिया कहते है। इस तरह क्रिया और प्रतिक्रियासे प्रयुक्त अवयवमे स्पदनशीलता लौट आती है और वह खुराकमेसे आवश्यक तत्त्वोको ग्रहण करने लगता है। जहॉ अवयवोमे प्रतिक्रियाकी शक्ति नही रहती वहॉपर शीतप्रयोगके तुरत बाद ही उष्ण प्रयोग करना चाहिए। शीत प्रयोगसे अवयव सिकुड़ता है और तुरत ही उष्ण प्रयोगसे फैलता है। इस तरह अवयवकी स्पदन-शक्ति वापिस लौट आती है और धीरे धीरे तत्स्थानीय सारा मल साफ हो जाता है। यही जलचिकित्साकी सफलताका रहस्य है।

मनुष्यके मूर्खतापूर्ण आहारसे, मूर्खतापूर्ण रहन-सहनसे और पेट तथा आतोको ठीक ठीक व्यायाम न मिलनेसे अधिकांश रोगोका मूल पाचन-शक्तिका बिगाड, जननेन्द्रियकी निर्बलता और उसमे वीर्यधारिणी शक्तिका अभाव होता है। लुई कुह्नेके कटि और मेहन-स्नान तथा वाष्प-स्नानोकी आश्चर्यजनक सफलताका कारण यही है। परंतु जलचिकित्सामे इन उपायोके अतिरिक्त और भी बहुतसे उपाय निकाले गये है और उनके अनुभव भी सैकड़ो मनुष्योपर किये गये है। इस पुस्तकको हम बहुत अधिक बढ़ाना नही चाहते, इस लिए बहुत ही थोडेसे प्रयोग आगेके पृष्ठोपर दिये जाते है। जिन्हे इनका पूरा ज्ञान प्राप्त करना हो वे हमारे शीघ्र प्रकाशित होनेवाले 'सोपपत्तिक जलचिकित्साशास्त्र' ग्रंथको पढ़े।

चिकित्साकी मुख्य विधियाँ तीन है—(१) शोधक (२) शामक और (३) पूरक।

शोधक प्रणाली उसे कहते है जो कि स्थानीय मलोको साफ करती है और उस अंगको व्यायाम पहुँचाकर ताकत देती है। शामक चिकित्साप्रणाली सिर्फ तत्कालीन आराम पहुँचाकर रोगको कुछ दिनके लिए दबा देती है और पूरक चिकित्साप्रणाली रोगी अवयवो या शरीरको आवश्यक तत्त्व पहुँचाती है।

जल-चिकित्सा शोधक भी है, शामक भी है और कुछ अशतक पूरक भी है। इसके शिवाय उपवास चिकित्सा[1] भी प्राकृतिक चिकित्सकोके

---

१ डा० बरनर मेकफेडनकी 'उपवास-चिकित्सा' भी हमारे यहाँसे प्रकाशित हुई है। मूल्य १=)

द्वारा अनेक बार काममे लाई जाती है। उपवाससे आयुर्वेद मतानुसार रोगोंका शमन होता है शोधन नही होता और यदि शोधन होता भी है तो बहुत दीर्घकालीन उपवासोके बाद। बहुतसे लोगोके मतानुसार उपवासमे अच्छे किए गये रोग फिर बार बार उठते हैं; परन्तु जल-चिकित्सासे अच्छे किये हुए रोग फिर नहीं होते। इसलिए जल-चिकित्सा सर्वश्रेष्ठ चिकित्सा-प्रणाली है। उपवास-चिकित्सा और जलचिकित्साके सिवाय ध्रुवचिकित्सा विद्युद् चिकित्सा आदि प्रणालियॉ भी प्रचलित है। परन्तु ये सब शामक विधियॉं है। ऐलोपैथी और कुछ अंशमे आयुर्वेदिक शामक चिकित्सा-प्रणालियॉ है परन्तु फर्क यही है कि जहॉं प्राकृतिक शामक चिकित्सा-प्रणालियोकी प्रतिक्रिया हानिकारक नही होती वहॉ प्राय: इनकी होती है।

जल-चिकित्साके नवीन प्रयोग

एक दफा यह रहस्य समझमे आजानेपर, कि शरीरके अवयवोमे सकोच-विस्तारकी शक्तिकी कमी हो जानेके कारण रोग उत्पन्न होते है तथा शीत और उष्ण प्रयोगोके द्वारा वह शक्ति वापिस लाई जा सकती है, जल-चिकित्साके प्रयोगोका द्वार खुल जाता है। फिर तो बुद्धिमान् मनुष्य बिना बताये अपने आप ही जल-चिकित्साके नये नये प्रयोगोका आविष्कार कर सकता है। जलचिकित्साके प्रयोग तीन विभागोंमे बॉंटे जा सकते हैं। (१) बहि:स्नान, (२) आभ्यन्तरस्नान और (३) आसेक तथा वेष्टन।

शरीरपर पानीकी धाराये छोडना-पानीके हौजो, जलाशयो आदिमे घुमना आदि बहि:स्नान है, तरह तरहकी बस्तियॉं (एनिमा) लेना

पानी पीना आदि अन्तःस्नान है और कपडेको पानीमे भिगोकर तथा बर्फको कपडेमे लपेटकर किसी विशेष अगपर रखना, ठंडा पानी बॉधना आदिको आसेक कहते है। आगे हम वे ही प्रयोग देते है जो कि बिना विशेष आयोजनके सरलतापूर्वक किये जा सकते है और बहुत ही अधिक गुणकारी है:—

अभिषेक-स्नान—पहले सिर, चेहरे और गर्दनको ठंडे पानीसे धोकर खूब ठंडे जलमे गमछा भिगोकर सिरपर बाँध ले। फिर एक कुर्सीपर बैठ कर गर्म पानीमे पैर डुबो ले अथवा एक हौजमे थोडासा गरम पानी भरकर पॉव पसारकर बैठ जाय और पजे दूसरे बर्तनमे गरम पानीमे डुबो रक्खे। कई हालतोमे हौजको टूँडीके कुछ ऊपर तक भर रखना आश्चर्यजनक लाभकारी होता है। इसके बाद एक पतीली गर्म पानीकी और १५–२० पतीलियॉ ठडे पानीकी तयार रक्खी जायॅ। रोगीके हौजमे बैठते ही पहले गरम पानीकी पतीली पीठपरसे झोकेके साथ उडेल दी जाय और इसके बाद ही तत्काल ठडे पानीकी पतीलियॉ उडेलना शुरू कर दिया जाय। ठडे पानीकी पतीलियॉ एक पीठपर और एक छातीपर इस क्रममे उडेली जावे। रोगी टबमे अपनी दोनो भुजाओको पाशबद्ध करके बैठे। पानीके बर्तन दूरसे झोकेके साथ ढुला कर उडेलना चाहिए। पतीलियोकी आवश्यक सख्या उडेल चुकनेके बाद एक गमछेसे शरीर पोछ दिया जाय। दो आदमी मिलकर उसे आधे घंटे तक रगडे। पीठ और पजोको विशेषतासे रगड़ना चाहिए। अन्तमे रोगीको लिटाकर गर्म वस्त्र उढा दिये जायँ। दूसरे ढँगसे यह स्नान रोगीको पलगपर लेटे हुए भी दिया जा सकता है।

यह अभिषेक स्नान मरे हुएसे अथवा आसन्नमृत्यु रोगीको जिसका कि सब शरीर ठंडा पड गया हो, केवल प्राण बाकी हो, फिर जिला देनेका सामर्थ्य रखता है। निमोनिया, मोतीझरा, लाल बुखार, टाइफस आदि सक्रामक व्याधियोकी उन्मादयुक्त अवस्थामे इस स्नानसे फिर चैतन्य आ जाता है। सर्पदंशसे तुरतके मरे हुए आदमीपर इस स्नानका प्रयोग करीब २४ घटे तक करनेसे अनेक बार वह जीवित हो जाता है। परंतु हृद्रोग, दमा, यक्ष्मा, Myocarditis, वृक्कशोथ, ऑतमे छेद होने, उदरावरण-कलाप्रदाह तथा योनिसौत्रिक रक्तस्रावोमे यह स्नान वर्जित है। गर्म और ठडे पानीके तापमानोमे जितना भी अधिक अतर होगा, इस स्नानका प्रभाव उतना ही अधिक तीव्र होगा।

निमज्जन, प्लावन और झंप स्नान—यह स्नान बडे हौजो, जलाशयो, नदियो आदिमे किया जाता है। स्नानके पहले गर्म पानीके स्नानसे, मालिशसे, धूपसे या तापसे शरीरको गर्म कर लेना चाहिए और अभिषेक स्नानके समान ठडे पानीका गमछा सिरपर बॉध लेना चाहिए। हौजमे घुसकर शरीरको खूब रगड़ना चाहिए। तैरना भी अच्छा है; परतु ठंड मालूम होनेके पहले ही, अर्थात् रक्ताभिसरण हो रहा हो और त्वचा उष्ण हो तब तक, बाहर निकल आना चाहिए। शीत स्नानोमे शरीरमे एकके बाद दूसरी प्रतिक्रियाएँ हुआ करती है। पहले ठंडा होने और फिर अपने आप गर्मी आ जानेको प्रतिक्रिया कहते हैं। कमजोर रोगी एकसे अधिक प्रतिक्रिया सहन नही कर सकते, इस लिए पहली प्रतिक्रिया समाप्त होनेके पहले ही बाहर निकल आना चाहिए, नही तो बुखार, सिरदर्द, बेहोशी आदि

शिकायत हो जाती है। हौजमेसे बाहर निकल कर तुर्की चादरसे शरीरको खूब रगडे और हलकी कसरत करे। इतनेपर भी शरीर गरम न हो तो कोई उष्ण प्रयोग करे। यह स्नान मेदोवृद्धि, मधुमेह, और प्रमेह, रोगोमे बहुत ही उपयोगी है; परतु रोगी अतिशय दुर्बल न हो, नही तो नुकसान होनेका डर है। यही स्नान टबमें भी कराया जाता है। टब ६ फीट लम्बा, २ फीट चौडा और डेढ़ फुट गहरा हो। रोगीको एक मोटी चादरपर लिटा कर उस चादरको दोनो तरफसे दो आदमियो द्वारा उठाकर ६०° फा० ठंडे पानीसे भरे हौजमे बारम्बार डुबाना और निकालना चाहिए। प्रत्येक बार रोगीको ५ सेकड तक पानीमे रखकर निकाले और शरीरमे जैसे ही खून दौड आवे वैसे ही फिर डुबा दे, इस तरह ४–५ दफा करे और अंतिम दफा उसे तौलियासे रगड कर पौछ दे और मालिश करा दे। यह स्नान शरीरको अत्यन्त बल देता और जीवन शक्तिको वृद्धिंगत करता है; परतु इसमे सावधानीकी बहुत आवश्यकता है। सूजनकी बीमारियोमे और अत्यन्त अशक्ततामे यह नही करना चाहिए।

उष्ण निमज्जन-स्नान—यह स्नान १००° से ११५° डिगरी तकके गर्म जलमे ३ से १५ मिनट तक कराया जाता है। पहले १००° डिगरीका पानी लेना चाहिए और फिर अधिकाधिक गरम पानी मिलाते हुए तापमान बढ़ाना चाहिए। पानीमे प्रवेश करनेके पहले सिरको गरम पानीसे रगड कर धो लेना चाहिए। गर्मी असह्य मालूम पड़नेपर तुरत निकल आना चाहिए। इस स्नानसे शरीरका समस्त मल निकलने लगता है। विष दूर हो जाते है। इस स्नानके बाद कुछ हलके शीत उपचार करने चाहिए। जलोदर तथा

अन्य जलीय रोगोमे यह स्नान एक विशेष अवस्थातक अत्यन्त लाभकारी है, सनिपात, खाँसी, शीर्षसौषुम्नकलाप्रदाह (सेरिब्रोस्पाइनल मेनिंजाइटिस), नष्टार्तव, कष्टार्तव, दमा, पुरानी खाँसी, वातव्याधियाँ, मेदोरोग, कामला, पेट और आंतोका शूल, वृक्कशूल, पित्ताश्मरी, मूत्राशय-शोथ, पागलपन, चित्तभ्रम, मसूरिका, शीतला, चर्मपीडिका, लालबुखार, मथरज्वर, मोती-झरा, उत्क्षेप, अधिकार्तव आदि रोगोंमे तो यह बहुत ही लाभकारी सिद्ध हुआ है। मस्तिष्क या सुषुम्नाके किसी भी अशके नाश, मन्दक्षय, सुषुम्नाप्रदाह, मस्तक-शिरा-वेध, हृदय-रोग आदिमे यह निषिद्ध है।

५५°—९०° फा. तापमानका स्नान **मंदोष्ण निमज्जन स्नान** कहलाता है। यह स्नान ३० मिनट तक दिया जाता है परतु यदि साथ साथ शरीरका रगड़ना जारी रक्खा जाय, तो घंटो दिया जा सकता है। तेज बुखार, फुप्फुससनिपात, मथरज्वर, टाइफाइडमे इस स्नानका उपयोग शरीरके तापमानकी वृद्धिको रोकनेके लिए होता है। रोगीका तापमान ज्यो ही १०१° से ऊपर पहुँचे त्यो ही उसे यह स्नान देना चाहिए। प्रारभ करते ही तापमान घटने लगता है और जब तक यह स्नान बद नही किया जाता, तापमान भी नही बढ़ने पाता। बहुधा रोगोकी तीव्रताके समय यह स्नान कई दिनो तक लगातार देनेकी आवश्यकता होती है। इसमे रोगीका सिर हमेशा ठडे पानीके भीगे गमछेसे बँधा रहना चाहिए और उसे जल्दी जल्दी बार बार भिगोते रहना चाहिए। मदोष्ण स्नानकी प्रतिक्रिया शरीरकी रगड पर ही अवलंबित है। इस स्नानमे बहुत ही अधिक सावधानीकी जरूरत है, क्यो कि इसके बाद जरा भी असावधानीसे ठड लग जाती है।

यदि किसी रोगीको १५—२० घंटे तक यह स्नान करना हो, तो एक चादर चार खूँटोसे चारो तरफ बाँध दे और उसमे रोगीको लिटाकर टबमे डुबोये रक्खे।

निमज्जन-स्नान जब ९२° से ९७° तकके तापमानके जलमे दिया जाता है तब उसे **मध्यम स्नान** कहते हैं। इसमे शरीरको रगड़नेकी आवश्यकता नहीं होती। कमजोर मनुष्यको ९७° का स्नान देना चाहिए और ताकतवालेको ९२° का। स्नान-कालमे रोगीको कोई बाह्यक्रिया नही करनी चाहिए। इस स्नानका विशेष उपयोग वायुजनित या नाडिसस्थानके रोगोमे है। पक्षाघात, पृष्ठवशकी स्तब्धता, पृष्ठवशका क्षय, मस्तिष्क और पृष्ठवशका प्रदाह, शीर्षावरण-प्रदाह, आकृति बिगाड़नेवाले आमवात, अनिद्रा रोग, हृदय और गुदाके जलोदर रोगपर भी यह अत्यन्त लाभकारी है।

मध्यम स्नान जब महीनो और वर्षोतक लगातार दिया जाता है। तब उसे **सतत-स्नान** कहते है, बीचमे पाखाना पेशाबके लिए ही रोगीको उठने दिया जाता है। शरीरका अधिकाश भाग यदि आगमे जल जाय तो सतत स्नानके सिवाय दुनियामे और ऐसा कोई उपाय नही है जिससे कि रोगीके बचनेकी आशा की जाय। कइ बुरी तरहसे जले हुए रोगी वीएनाकी सरकारी अस्पतालोमे २—२ वर्षके सतत स्नानके बाद पूर्ण स्वस्थ हुए है। उनके शरीरपर जलनेका चिह्न-मात्र भी शेष नही रहा। इसी तरह बुरी तरहसे लगी हुई सर्वांग चोटोपर भी यह स्नान रोगीकी जान बचानेमे अमृतका काम करता है। इसके सिवाय योषापस्मार अथवा अपतत्रवायु (हिस्टीरिया) त्वचाकी अति-संवेदनशीलता, उन्माद, गृध्रसी, पक्षाघात, दुष्टशीतला, विचर्चिका,

गेग्रीन, जलोदर, अतिसार, अपस्मार आदि रोगोपर भी यह स्नान आश्चर्य जनकप्रभाव दिखाता है।

टबके पानीमे यदि आक्सीजन पेराक्साइड और उससे दूने परिमाणमे परमेग्नेट आफ पोटाश मिला दिया जाय, तो पानीमेसे ओषजन वायु निकलने लगती है। इसमे घुसकर किए गये स्नानको ओषजन-स्नान कहते है। ओषजन वायु प्राणवायु है—जीवनका आधार है। इस वायुके स्पर्शसे रोगीके शरीरमे अपूर्व ताज़गी आ जाती है। रक्तके दबावकी वृद्धि (Blood Pressure) के रोगोमे यह स्नान अत्यन्त प्रभावशाली उपाय है।

इस स्नानसे अनेक बार असाध्य जलोदर और हृदयरोग तक अच्छे हो गये है, मूत्रमेसे अल्बुमेन निकलना बिल्कुल बद हो जाता है।

अभ्यन्तरस्नान या बस्तिकर्म

अभ्यंतरस्नानोमे गुदाबस्ति, योनिबस्ति, मेढ्र-बस्ति, उत्तर-बस्ति, उदर-बस्ति, कर्ण-बस्ति, चक्षु-बस्ति, नासिका-बस्ति, आदि प्रक्रियाएँ है और इनके भी जलके तापमानोके भेदसे बीसियो भेद है। यहॉपर हम गुदाबस्तिके ही थोडेसे प्रयोग देते है।

आजकल ऐलोपेथिक चिकित्सा-प्रणालीमे गुदाबस्ति अर्थात् एनिमा देनेका प्रचार बहुत बढ़ गया है; परतु इसका सिर्फ मल निकालनेके लिए ही एक हानिकारक ढगसे उपयोग किया जाता है। किन्तु प्राकृतिक जल चिकित्सक लोग बस्तियोका प्रयोग शरीरके भीतरके उन अवयवोपर, जिन तक कि बाहरसे हमारी पहुँच नही हो सकती, शीत और उष्ण प्रयोग करने और उनको बलिष्ठ और शुद्ध बनानेके

लिए करते है। जलचिकित्सक गुदाबस्तिका डब्बा बहुत ऊपर नहीं रखते है और ऐसा उपाय करते है जिससे कि पानी बहुत धीरे धीरे जाय। गुदाबस्ति देते समय रोगीको इस तरह लिटाना चाहिए जिसमे कि पैरके तरफका भाग ऊपर और सिरकी ओरका भाग नीचे रहे। नलीमेसे हवा न चली जाय इसकी भी सावधानी रखनी चाहिए। उष्ण पानीके प्रयोगसे ऑतोके स्नायु धीरे धीरे कमज़ोर होते जाते है और फिर उष्ण पानीका असर होना बद हो जाता है। जिन रोगियोको गरम पानीका एनीमा बहुत बार दिया गया था चीर फाड करनेपर देखा गया कि उनके ऑतोके धारण करनेवाले स्नायु बिल्कुल नष्ट हो गये है। इस कारण उष्ण पानीके बाद थोडासा ठंडा पानी भी गुदाबस्तिमे ले लेना चाहिए। शीत पानीकी गुदाबस्तिकी आदत नही पडती। हॉ, उसकी नित्य आवश्यकता इस लिए पड़ सकती है कि रोगका मूल कारण उससे दूर नही होता।

ठंडे पानीकी गुदाबस्तिका सबसे बढ़कर उपयोग चढ़े ज्वरको उतारनेमे होता है। डा० केलाग मोतीझराके ज्वरमे अत्यन्त सफलतापूर्वक शीत गुदाबस्तिका प्रयोग किया करते है। मोतीझराके ज्वरमे यह बहुत ऊपरसे नही दी जानी चाहिए, नही तो पानीकी तेज धारसे ऑतोके घाव फूट जायॅगे और नुकसान होगा। इसके लिए पतली रबरकी नलीका यंत्र होना चाहिए और डिब्बेको बहुत नीचे रखकर देना चाहिए। पानीको धीरे धीरे मृदुगतिसे भरकर ५, १० या १५ मिनट तक रोक रखना चाहिए और इसके बाद रबड़का सबंध बीचमे ही तोड़कर लौटते हुए पानीको किसी बर्तनमे गिरने देना चाहिए और फिर दूसरा ताजा ठडा पानी प्रवेश कराना चाहिए। रोगीको

हिलने डुलने न दिया जाय। पलग वगैरहका ऐसा इंतज़ाम हो कि रोगी लेटा लेटा ही यह बस्ति लेता रहे और शौच जा सके। इस प्रयोगसे १०६° का तापमान भी जो कि आध घंटेमे मनुष्यकी जान ले लेता है शीघ्र उतारा जा सकता है। पहले पानीका तापमान ९२° अंश हो और फिर प्रत्येक बार अधिकाधिक ठडा दिया जाय; परतु ७०° से अधिक ठडा जल उपयोगमे नही लाना चाहिए। एक पिंटसे अधिक जल न चढ़ाया जाय। बुखारकी अवस्थामे गुदा भाग ऊपर करनेकी जरूरत नही है।

जब अधिक पानी चढ़ाना हो, तभी सिर नीचे और पैर ऊपर करके लेटना चाहिए। इस विधिसे ली गई गुदाबस्तिको **बृहत् अंत्रस्नान** कहते है। शीतल जलके बृहत् अत्रस्नानसे शुष्क कोष्ठबद्धता (ऐसा कब्ज जिसमे मल सूखता है) पित्तोन्माद, उदरवायु, अनिद्रा, थकावट, पित्ताशयकी पथरी, यकृत्वृद्धि, पित्तवाहिनियोकी श्लेष्मा और कामला (पीलिया) रोग अच्छे हो जाते है।

११०° से १२०° तकके तापमानकी गुदाबस्तिको उष्ण गुदाबस्ति कहते है। इससे पेड्रूके पासके अगो (गर्भाशय, मूत्राशय, पित्ताशय, प्रोस्टेट ग्रथि) का सिकाव होता है और उनके रोग दूर होते है। इन अगोकी सूजन भी इससे अच्छी हो जाती है। मंथरज्वर, मोतीझरा, हैजा तथा अन्य बीमारियोमे जब जीवन-शक्ति एकाएक जवाब दे देती है और शरीर ठडा पड़कर रोगी मृत्युके मुखमे जाने लगता है, तब अनेक बार इस प्रयोगसे प्राण फिर लौट आते है। शरीरमे पुनः गर्मी आ जाती है।

गुदाबस्तिका प्रयोग एक ही अवस्थामे हानिकारक और कभी कभी तत्क्षणसंहारक होता है। यह अवस्था मंथरज्वर आदिमे तब होती है जब कि आंतोमे रक्त-क्षरणसे मासके लोथडे जम जाते है और गति-हीनताके कारण सडने लगते है। परतु इस अवस्थाको जाननेका कोई भी सुसाध्य साधन नहीं है। इस लिए यदि ऐसा संदेह हो तो ४–५ दिन ठहरकर उष्ण बस्तिका प्रयोग करना उचित है। तब इससे ये लोथडे धुलकर बाहर निकल जाते ह और कोई जोखिम नहीं रहती।

रक्त-प्रक्षालिका बस्ति—इस बस्तिको देनेके लिए वह कॉचकी नली काममे आती है–जो कि स्त्रियोकी योनि-बस्तिके काममे लाई जाती है। इस नलीका छेद बहुत बारीक होता है और इसमेसे पानी इस क्रममे अदर प्रवेश करता ह कि वह अत्रमे इकट्ठा नही हो पाता और आँतोद्वारा सोख लिया जाता है। यह बस्ति देनेके पहले जुलाबसे अथवा अन्य उपायोसे आँते बिल्कुल साफ कर ली जाती है। बस्तिका डब्बा रोगीके सम-धरातलमे रखा जाता ह। यह पानी ऑतोमे सोखा जाकर रक्तमें मिलता है और वहॉसे सारे शरीरमे घूमता हुआ मूत्रसे निकाल दिया जाता है। इस रास्तेसे सपूर्ण शरीरके सचित मल और विष निकाल दिये जाते है। यह बस्ति अनेक दफा १५–२० रोज तक लगातार दी जाती है। गर्मी, सुजाक, मथरज्वर, आदि सभी रोगोके विष इससे बाहर निकाल दिये जाते है और रोगी सपूर्ण स्वस्थ हो जाता है। उपात्रशोथ, यूरेमिया, अत्रशोथ, उदरककला-प्रदाह आदि रोग भी इससे नष्ट हो जाते है।

योनिबस्ति और उत्तरबस्ति—बाजारमे गुदाबस्तिके यंत्रके साथ योनिबस्तिकी नली भी आती है। इस बस्तिमे शीतल जलके प्रयोगसे स्त्रियोकी योनिकी ताकत बढ़ती है तथा गर्भाशयकी ताकत और स्थिति सुधारी जा सकती है। उष्ण पानीके प्रयोगसे वहॉके सचित मल दूर होते है और जितना चाहिए उतना सिकाव हो जाता है। इन प्रयोगोसे समस्त योनिसबंधी बीमारियॉ अच्छी हो जाती है।

मेढ्रबस्तिका प्रयोग पुरुष जननेन्द्रियमे होता है। इसमे भी शीत और उष्ण जलके प्रयोगोसे पुरुष-जननेन्द्रिय और मूत्राशयकी समस्त व्याधियॉ दूर की जा सकती है।

आसेक प्रयोग

ठडे या गरम किसी भी तापमानके पानीको वस्त्र, स्पज, थैली आदि किसी भी वस्तुके द्वारा शरीरके किसी भी हिस्सेपर लगानेको आसेक प्रयोग कहते है। इस कामके लिए साधारण तौरपर ३—४ तह किया हुआ फलालैनका अथवा अन्य किसी भी नर्मवस्त्रका टुकडा काममे लाया जाता है। यदि यह प्रयोग देर तक करना हो तो रबरकी थैली, रबरकी नलिकामडल आदि यत्र भी काममे लाये जाते है। यहॉ स्थानाभावसे हम इसके थोडे ही प्रयोग देते है।

लगातार देरतक दिया हुआ शीत आसेक घुटनो आदिकी स्थानीय सूजन तथा सूजे हुए व्रणोको दबा देता है। चढ़े बुखारमे यदि मस्तकपर शीत आसेक किया जाय तो वह तापमानको कम करता है, उन्मादको मिटाता है, उत्तेजनाको शात करता है। अजीर्ण रोगमे भोजनके आध घटे पहले पेटपर किया हुआ शीत आसेक पाचनशक्ति बढ़ाता है, और नाडिशूलमे बर्फके शीतासेकसे लाभ होता

है । खूनी बबासीरपर भी शीत आसेक आराम पहुँचाता है । हृदयपर शीत आसेक करनेसे हृदयको बल मिलता है । हृदयसे निकलकर ही रक्त सारे शरीरमे फिरता है, इसलिए बर्फके आसेकसे वह अपने मूलमे ही ठंडा होने लगता है, इससे ज्वरकी तीव्रताके समय हृदयपर किया हुआ शीत आसेक बुखारको उतार देता है । इसी तरह सुषुम्नापर किया हुआ शीत आसेक भी बुखारको कम कर देता है । परतु ऐसे समय यह प्रयोग लगातर आध घटेसे अधिक न करना चाहिए, इसके बाद ५–७ मिनटके लिए उसे हटा लेना चाहिए । चेहरे और मेरुदंडके ऊपरी हिस्सेपर किया हुआ शीत आसेक नाकके रोगोमे लाभ पहुँचाता है, खून गिरनेको तुरत बद कर देता है, नाकमेसे पानी गिरना भी बद हो जाता है । जॉघके अदरूनी भागपर, पेडूके निम्न भागपर, योनि तथा कमरपर किया हुआ शीत आसेक गर्भाशय, आत, बवासीर तथा अन्य योनिसबधी बीमारियोको अच्छा करता हैं । गुदा और जॉघोपरका शीत आसेक प्रमेहको दूर करता है। शीत आसेकका प्रयोग यदि लगातार किया जाय तो उस स्थानका रक्त-सचय (जो कि सूजन या प्रदाहसे होता है) दूर होता है । फुफ्फुस-प्रदाह (न्यूमोनिया) और मथर ज्वरमे यह अत्यत मूल्यवान् है । केलाग महोदय गत २५ वर्षोसे शीत आसेकका प्रयोग फुफ्फुस-सनिपातकी प्रारंभिक चिकित्सामे करते है और आज तक एक भी रोगी इस रोगसे उनके अस्पतालेम नही मरा ।

शरीरपर जो असर अतिशीत आसेकका होता है वही असर अति उष्णे असकका भी होता है । परतु उष्ण आसेकके समय कपड़ा अच्छा तरह निचोड़कर फैलाना चाहिए, नहीं तो छाले पड़ जानेका

दूर रहता है। उष्ण आसेकका प्रयोग लगातार बिना रुके करना चाहिए, नहीं तो इच्छित असर नही होता। उष्ण आसेकसे वह अवयव और स्थान निर्बल पड़ जाता है, इस लिए प्रति आध घंटेमे १—२ मिनटके लिए उस स्थानपर शीत आसेक भी कर देना चाहिए। यकृतशोथ, उदरशोथ, प्लैहिक रक्तसंचय और वृद्धि, जीर्ण श्लेष्मा, उदरावरणप्रदाह, डिम्बाशयप्रदाह, पित्ताशयकी पथरी, वृक्कोकी पथरी, यकृत वेदना, सांक्रामिक कामला, नाड़िशूल, उदरवेदना, चक्षुवेदना, सिरदर्द, दाँतका दर्द, आधाशीशी, कानका दर्द, श्वासनलिकाशोथ, गलेके कउए (Tonsils) की वृद्धि, रोहिणी (डिफ्थीरिया), गल-ग्रंथिशोथ, फुफ्फुसप्रदाह, फुफ्फुसावरणप्रदाह, कनीनिकाप्रदाह, मंथर-ज्वर, जठरदाह, गुदप्रदाह, विसर्प, शीर्षावरणप्रदाह, ख्वूनी बवासीर अंडशोथ, डिम्बाशयशोथ, योनिशोथ, मूत्राशयशोथ, गर्भाशयशोथ, अपच, मूत्रनिरोध, कष्टार्तव, वातवेदना, दादखुजली, मुँहासे, अंत्रवृद्धि, आदि असख्य रोगोमे अति उष्ण आसेक लाभ पहुँचाता है। इतने अधिक रोगोमे इसका उपयोग होता है कि उनके नाम गिनाना कठिन है।

आयुर्वेद और जलचिकित्सा

प्राचीन आयुर्वेदके ग्रंथोमे भी जलचिकित्साके बहुतसे प्रयोग मिलते है। कुटीप्रवेश, बाष्पस्नान, बस्तीकर्म आदि तो प्रसिद्ध ही है। बृहन्निघटुरत्नाकर ग्रंथके ज्वर-प्रकरणमे भी जल-चिकित्साका एक प्रयोग मिलता है, जो नीचे दिया जाता है:—

उत्तानसुप्तस्य गभीरताम्रकांस्यादिपात्रे निहिते च नाभौ।
शीताम्बुधारा बहुला पतन्ती निहंति दाहं ज्वरितज्वरं च॥

अर्थात् ज्वरवाले मनुष्यको चित्त सुलाकर उसकी नाभिपर गहरा ताँबे या कासेका बर्तन रखकर उसपरसे शीतल जलकी धार छोड़े तो जलते ज्वरका और जलनका नाश होता है ।

उस समय जब कि बर्फ, थैली आदिके ऐसे सुभीते नही थे जैसे कि आज है यह प्रयोग किया जाता था । इसीसे मालूम होता है कि प्राचीन वैद्य भी इस सिद्धान्तको समझते थे ।

आर्द्र-चादर-स्नान

एक बड़ा तख्ता या टेबिल लेना चाहिए कि जिसपर रोगी सो सके। इसपर आवश्यकतानुसार ४—५ कम्बल लटकते हुए बिछा दे । उनपर भीगी हुई दो साफ और मोटी फलालेनकी चादरे बिछा देना चाहिए। फिर उसपर रोगीको नगा लिटाकर दोनो हाथोको बगलमे रखकर चद्दर और कम्बलोको एकके बाद एक उसके शरीरपर सब तरफसे लपेट देना चाहिए । चादर यदि ठडे पानीमे भिगोई गई हो तो शरीरसे अच्छी तरह सटाकर लपेटी जानी चाहिए । बीचमे जरा भी खाली जगह रह जायगी, तो सर्दी हो जानेका डर रहेगा ।

चादर यदि ठंडे पानीमे भिगोई हुई होगी, तो रोगीको पहले १० से २० मिनट तक ठडीसे कॅपकॅपीसी आयगी परन्तु जैसे जैसे प्रतिक्रिया होगी, वैसे वैसे आराम मालूम होगा और निद्रा आ जायगी । परन्तु यदि रोगी कमजोर होगा, तो प्रतिक्रिया नहीं होगी और ऐसी हालतमे प्रतिक्रिया करनेके लिए पैरोको गर्म पानीसे सेकना चाहिए ।

इस प्रयोगमे चार अवस्थाएँ मानी गई है । पहली अवस्थामे कँप कँपी होती-है । दूसरी अवस्थामे कँपकँपी बन्द होकर आराम मिलता है।

इस समय गर्मी ९२° होती है। नींद आ जाती है। ९२° अंश गर्मी होनेके बाद तीसरी अवस्था शुरू होती है। कमजोरी मालूम होती है और पसीना आना शुरू होता है। पसीना आते ही चौथी अवस्था आरंभ हो जाती है। ये चारो अवस्थाएँ आवश्यकतानुसार बढ़ाई जा सकती है। प्रथम अवस्था चादरको बदलकर बढ़ाई जा सकती है। दूसरी अवस्था प्रतिक्रियाके शुरू होते ही कम्बलोकी सख्या कम करके बढ़ाई जा सकती है। परंतु ऐसा करते समय इस बातकी सावधानी रखनी चाहिए कि अदरकी चादर ढीली न पड़ जाय, नहीं तो सर्दी लग जायगी और परिणाम बुरा होगा। उढ़ावन-का कुछ हिस्सा कम करके तथा सिर और चेहरेको लगातार ठडे पानीमे धोते रहकर तीसरी अवस्था बढ़ाई जा सकती है। इसी तरह चौथी अवस्था भी हर आध घंटेमे गरम या ठंडा पानी पीकर अनि-श्चित समय तक बढ़ाई जा सकती है। यदि पसीना आनेमे देर हो रही हो, तो गर्म पानीकी बोतले कम्बलके अंदर रक्खी जानी चाहिए।

आर्द्र-चादर-स्नानकी प्रथम अवस्था पुष्टिकारक और शक्तिवर्धक है, इसलिए इसको इस अवस्थामें **शक्तिवर्धक चादर-स्नान** भी कहते है। यह पांडुरोग, क्षय, यकृतका बिगाड़, कमजोरी आदिमे उपयोगी है। प्रथमा अवस्था खतम होनेसे पहले ही यदि चादर बदली जाया करे तो इसे **शीतक-आर्द्र-चादर-स्नान** कहते है। यह तापमानकी वृद्धिको रोकनेमे उपयोगी है। इस स्नानके लिए चादर ६०°–७०° तापमानके ठंडे पानीमे भिगोनी चाहिए। **कम्बलके**

नीचे चादरपर बर्फके टुकड़े फेरते रहनेसे चादर बदलनेकी आवश्यकता नहीं रहती। मोतीझरा, टाइफस, मलेरिया, प्लेग, आदिमें यह चादर-स्नान यदि दूसरी अवस्थाके प्रारभ तक ले जाया जाय, तो पांडु, हलीमक, ज़ियाबेतुस (मूत्रमेह), स्कर्वी, कब्ज, पेटकी वायु आदिके रोगोमें उपयोगी है। चादरस्नानका उपयोग तब होता है जब कि रोगी जलके स्नानको सहन न कर सके।

मध्यम चादर-स्नान अर्थात् द्वितीय अवस्था तक ले जाया गया आर्द्रचादरस्नान अनिद्रा, उन्माद, उदासीनता, न्यूरेस्थेनिया, मोतीझरा, फुफ्फुसप्रदाह, धनुर्वात, आदि रोगोमे उपयोगी है।

उष्ण चादरस्नान, अर्थात् तीसरी अवस्थाके अन्त तक ले जाया गया **आर्द्र-चादर-स्नान** मस्तकमे रक्त इकट्ठा होना, यकृत और प्लीहामे रक्त इकट्ठा होना और उनकी वृद्धि, कब्ज और जलोदर रोगमे विशेष उपयोगी है। शीतला, लाल बुखार और मातामे भी अतिशय उपयोगी है।

आर्द्र चादरस्नान जब चतुर्थ अवस्था तक ले जाया जाता है तब उसे **स्वेदक चादर-स्नान** कहते है। इसमे कबलोकी संख्या बढ़ा दी जाती है और गरम पानीकी बोतले आदि भी रख दी जाती है। पीलिया, जलोदर, आतशक, मेदोवृद्धि, गठिया, मलेरिया, सूखी खाँसी, फुफ्फुसप्रदाह, फुफ्फुसावरणप्रदाह, (प्लुरिसी) आदि रोगोमे यह विशेष उपयोगी है। अधिक तेज स्वेदक चादरस्नान लेनेके बाद शरीरपर कोई शीत प्रयोग अवश्य करना चाहिए, नही तो चक्कर आते है और कमजोरी बढ़ती है।

शीत-घर्षण

बरफके टुकड़ेको हाथमे लेकर, फलालेनके टुकड़ेमे लपेटकर, अथवा ठडे पानीमे हाथ डुबो डुबोकर, स्पज डुबो डुबोकर तथा अन्य तरहसे सारे शरीरमे या उसके किसी हिस्सेपर रगड़नेको शीत-घर्षण कहते है। अनेक दफा बारीक पिसा हुआ नमक भी ठंडे पानीमे अथवा बरफमे गीला कर करके शरीरसे घिसा जाता है। यह प्रयोग गरम कमरेमें अगीठीके पास करना चाहिए जिसमे प्रतिक्रिया शीघ्र हो। पहले शरीरके एक भागको उघाड़कर उसपर घर्षण करना चाहिए। उसपर घर्षण कर उसे पोछकर उढ़ा देना चाहिए और दूसरे अवयव-को उघाडकर उसपर घिसना शुरू करना चाहिए। दूसरे अगकी ओर बढ़नेके पूर्व पहले अगको घिसकर उसमे प्रतिक्रिया उत्पन्न कर देनी चाहिए जिसमे वह खूनके अभिसरणसे लाल हो जाय। शीत घर्षणसे सारे शरीरमे खून तेजीसे दौडने लगता है, सभी अग ताजे हो जाते है। सारे नाडिजालपर, हृदयपर, समस्त शिराजालपर इस प्रयोगका बहुत ही बलकारक और सुदर असर होता है। यह प्रयोग बाह्य स्नानोकी अपेक्षा मृदु है और उससे कुछ ही कम असर रखता है; परंतु कमजोर लोगोको यह विशेष सहन होता है। पाडुरोग, हलीमक क्षय, हृदयका जलरोग, हृदयकी कमजोरी, बुखार, मोतीझरा, शारी-रिक तापमानकी कमी, गर्भावस्था, मलेरिया, आमवात, खॉसी, इन्फ्लुएंझा, स्कर्वी, मदाग्नि, कठमाला, जियाबेतुस, मेदोरोग, उदरवायु, आदि असख्य रोगोमे इससे लाभ होता है। जिस अगकी बीमारी हो उस अगपर इसका प्रयोग विशेष तौरसे करना चाहिए। दमा और हृदयकी कमजोरीमे इसका प्रयोग सावधानीसे करना चाहिए।